मक्खी से शिक्षा लें। हम कर्त्तव्यों में अपने पूरे अस्तित्व को लिपायमान न करें। कर्त्तव्य पूरा करके न्यारा होना सीखें। अनावश्यक रूप से घर-परिवार के कार्यों में फँसे रहना, पुण्य कर्मों के लिए समय ना निकालना, आत्म अवलोकन न करना, संसार से लौटना भी है यह भूल जाना, भगवान के प्रति पल-पल कृतज्ञता का इज़हार न करना – ये कुछ ऐसी बातें हैं जो हमें कर्मों के बोझ तले लाद देती हैं, हमारा सुख-चैन हर लेती हैं। फिर हमारे मुख से निकलता है, हमने इतना किया, हमें क्या मिला?

न्यारेपन से आती है ताजगी

केवल वस्तुओं, पदार्थों के प्रति ही मेरापन नहीं, मेरेपन से भरे संबंध भी पाश ही सिद्ध होते हैं। मेरेपन से भरे संबंध ऐसे ही होते हैं जैसे छुईमुई के पौधे का स्पर्श। हमारा स्पर्श उसमें मुरझाहट ला देता है। हम तो उसे प्यार से सहलाते हैं पर यह प्यार उसे रास नहीं आता, वह पौधा अपनी ताजगी त्याग देता है। ताजगी की वापसी के लिए पुन: पुन: सहलाने का प्रयास किया जाये तो परिणाम बद से बदतर होता जाता है। मेरेपन और मोह से भरे संबंधों में भी ऐसा ही होता है। हम अपने मोह और मेरेपन से जितना उनको छूते हैं, खिलाते हैं, पिलाते हैं, वे उतने ही ज्यादा मुरझाते जाते हैं। फिर हम कहते हैं, हम इतना करते हैं फिर ये खुश क्यों नहीं रहते? इसलिए कि इनका हाल छुईमुई जैसा हो गया है। छुईमुई को ठीक करने के लिए हमें उससे न्यारा होना होता है। ज्योंहि हम उससे न्यारे हो जाते हैं, उसकी ताजगी लौट आती है। संबंधों में भी न्यारापन आने से वास्तविक प्यारापन आता है। न्यारापन अर्थात् ये सब भगवान के हैं, हम इनके साथ निमित्त बनकर सेवारत हैं, ज़िम्मेवारी बाबा की है।

सहयोग और लगाव

एक होता है सहयोग करना, वह ठीक है पर मोहवश चिपकना ग़लत है। जैसे दो कागज़ों को हम कोने पर स्टेपलर लगाकर जोड़ते हैं। कोने से जुड़े दोनों कागज़ पूरे के पूरे खुले रहते हैं और हम उनका आगे-पीछे का पूरा मैटर पढ़ सकते हैं। पिन ने दोनों कागज़ों को इकट्ठा करने में सहयोग दिया। सहयोग आवश्यक है पर यदि यही कागज़ किसी भी आधार से, एक तरफ से आपस में चिपक जाएँ तो, चिपके तरफ का मैटर तो व्यर्थ ही हो जायेगा। कागज़ थे तो दो पर चिपककर वे दो के स्थान पर एक जितना कार्य भी नहीं करेंगे। इसको कहेंगे आपसी लगाव (attachment) ने उनकी शक्ति को व्यर्थ कर दिया। इसी प्रकार, हम भी कार्य को लगाववश करते हैं तो मानो उससे चिपक जाते हैं, इससे कर्त्तव्य का निर्वहन भी ठीक से नहीं होता और शक्ति भी ज्यादा लगती है। परंतु जब कर्त्तव्य पूर्ण करते हुए भी अपने मन-बुद्धि को निर्बन्धन रखते हैं तो कार्य भी ठीक होता है और शक्ति भी बचती है।

निर्बन्धन का अर्थ है हम यही चिन्तन रखें कि हम निमित्त मात्र हैं, शरीर में भी आत्मा निमित्त मात्र है और सृष्टि मंच पर पार्ट भी निमित्त मात्र बजा रही है। यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है, सब कुछ अस्थाई और नश्वर है। जो है ही अस्थाई, उससे स्थायित्व की आश क्यों लगाएँ? स्थाई हूँ मैं आत्मा और मेरा पिता परमात्मा। तो क्यों न स्थाई में मन को लगाऊँ? इस प्रकार, लौकिक कर्म करते भी अलौकिक चिन्तन करते रहेंगे, हर कर्म को ईश्वर अर्पण करते रहेंगे, मन-बुद्धि को 'मैंने इतना किया' इस बोझ से हलका रख यह सोचेंगे कि करावनहार ने मुझ निमित्त से करवाया तो जीवन के उत्तरार्ध में यह प्रश्न नहीं उठेगा कि मुझे क्या मिला बल्कि यह विचार आयेगा कि जो किया, वह मुझ आत्मा में संस्कार रूप में समाहित है, यहाँ भी मेरे साथ है और साथ ही जायेगा। ❖